स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत-२५३९ अंक-१९१, वर्ष-१७, अगस्त-२०१३

धन्य अवतार !

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके संबंधमें परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के उद्‌गार

(बहिनश्री को आते देखकर कहा -) बहिन के लिये जगह करो, 'धर्म की शोभा' चली आ रही है। बहिन न तो स्त्री हैं, न पुरुष, वे तो स्वरूप में हैं। भगवतीस्वरूप एक चंपाबेन ही हैं, उनकी दशा अलौकिक है। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज कर रही हैं।

❁

बहिन की पुस्तक (वचनामृत) आयी बहुत ऊँची ! सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्द में से आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है - अकेला माल भरा है। बहुत गंभीर ! थोड़े शब्दों में बहुत गंभीर ! यह तो अमृतधारा की वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंग का मक्खन है, सारमें सार आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' - से यह पुस्तक अलौकिक है। जगत के भाग्य - ऐसी वस्तु बाहर आई ! ऐसे वचनामृत किसे नहीं रुचेंगे ? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथने देखे वे यह भाव हैं।

❁

यह तो बहिन के अन्तर के वचन हैं न ! बहिन की भाषा सादी, किन्तु अंतर की है। अनुभव विद्वता नहीं चाहता, अंतर की अनुभूति एवं रुचि चाहता है। यह जो बहिन के शब्द हैं वे भगवान के शब्द हैं। भाषा भी नयी और भाव भी नये ! सादी भाषा में अन्दर रहस्य है। लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं, मैंने कभी कहा नही था; जब यह (वचनामृत) पुस्तक हाथ में आयी (देखी-पढ़ी) तब रामजीभाई से कहा - भाई ! यह पुस्तक एक लाख छपाओ।

❁

ता.६-९-७७

(बहीनश्री के वचनामृत) पुस्तक समय पर बाहर आई। बहिन को कहाँ बाहर आना ही है, किन्तु पुस्तक ने बाहर ला दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव बहुत गंभीर हैं। मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली है। एक बार नहीं किन्तु पच्चीस बार पढ़ ले फिर भी सन्तोष न हो ऐसी पुस्तक है। यह दस हजार पुस्तकें छपवाकर सब हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म' के ग्राहकोंको भेंट दी जाएँ ऐसा मुझे लगा।

❁

ता.१६-९-७७

मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है - सारे समयसार का सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगों के हाथमें जायगी तो हिन्दुस्तानमें डंका बजेगा। यह पुस्तक पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जाएँगे - ऐसी बात है। ... जगत को लाभ का कारण है। मान छोड़कर एक बार मुनि (भी) पढ़ें तो उनको लाभ का कारण है।

❁

ता.१-१०-७७

परिणमन में से निकले हुए शब्द हैं। बहिन को तो निवृत्ति बहुत। निवृत्ति में से आये हुए शब्द हैं। पुस्तक में तो समयसार का सार आ गया है - अनुभव का सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' वस्तु तो ऐसी बाहर आ गई है कि इसे हिन्दुस्तानमें सब जगह प्रगट करना चाहिए।

❁

यह बहिन के वचन हैं वे अनंत ज्ञानियों के वचन हैं। इन्द्रों के समक्ष इस समय श्री सीमंधरदेव जो कह रहे हैं वही यह वाणी है। यह पुस्तक साधारण नहीं है, इसमें तो बहुत कुछ भरा है। भाषा मीठी है, सादी है; भाव गहरे और गंभीर हैं। दिव्यध्वनि का यह आवाज है। अरे ! एक बार मध्यस्थरूप से इसे पढ़े तो सही ! भगवान की कही हुई जो ॐकार ध्वनि है उसमें से निकला हुआ यह सार बहिनने कहा है।

❁

सं.१९९७

इस काल का योग अनुकूल है; बहिन जैसों का इस काल अवतार है। अरे ! धर्मात्मा गृहस्थ से भेंट होना भी अनंत काल में कठिन है। भाईयों को इस काल धर्मात्मा पुरुष मिल जायें, परन्तु इस काल में बहिनों के भी सद्भाग्य हैं।

❁

ता.१७-९-८०

बहिन से बोला गया अन्तरमें से। वहाँ से (विदेहक्षेत्र से) आयी हुई बात है। बहिन वहाँ से आयी हैं। ....बहिन (लड़कियों के सामने) बोली और लिखा गया, नहीं तो बाहर आता ही कहाँ से ? (यह सब) खोदना है पत्थरमें (संगमरमर के पटियोंमें)

❁

यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी है कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दों में द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगत के भाग्य कि ऐसी सादी भाषा में पुस्तक बाहर आ गई। वीतरागता के भावका रटन और घोटन है। सारे हिन्दुस्तानमें ढिंढोरा पिटेगा। ज्यों ही पुस्तक हाथ में आयी त्यों ही कहा कि एक लाख छपना चाहिये।

❁

बहिन (चंपाबेन) की निर्मलता बहुत-बहुत ! निर्मलता-निर्मलता ! अपूर्व-अपूर्व स्मरण ! शांत एवं गंभीर ! बहिन तो धर्मरतन हैं। महाविदेह में बहुत निर्मलता थी; वहाँ की निर्मलता लेकर

यहाँ आयी हैं। एकान्तप्रिय, शान्ति से अकेली बैठकर पुरुषार्थ करती रहती हैं। उन्हें कहाँ किसी की पड़ी ही है ! कुटुम्बकी भी नहीं पड़ी ! अन्तर स्वरूप-परिणति में रहती है।

❁

ता.१९-९-७१

ओहो ! बहिन के ज्ञानकी निर्मलता की क्या बात कहें ! बहुत स्पष्ट ज्ञान !...बहिन तो जबरदस्त आराधना करती हैं। अकेली बैठी अपना काम करती ही रहती हैं। ...अब तो उन्हें बाहर लाना ही है। उनका जयजयकार होगा, उनकी बड़ी शानदार उन्नति होगी, जो जियेंगे वे देखेंगे। अलौकिक द्रव्य है, उनकी लाईन ही ओर है।

❁

भाद्र सुदी ११, सं. २०२६

बहिन बोलती तो बहुत कम हैं। लड़कियों के बहुत भाग्य हैं। यदि मौन रहें तब भी उनके दर्शन से तो लाभ ही है।...हमें बहुत समय से ख्याल था कि बहिन कि बहुत शक्ति है।

❁

कार्तिक कृ.१२, सं. २०२२

राजुल को पूर्वभवकी-गीता की याद आई वह तो सामान्य बात है; बहिनको (बहिनश्रीको) तो द्रव्य से और भाव से - दोनों प्रकार से स्मरण है। शुद्ध आत्मा के ज्ञान सहित का बहुत ज्ञान है। भावस्मरण अर्थात् निज शुद्ध आत्मा का, और द्रव्यस्मरण अर्थात् यह जीव स्वयं पहले कहाँ था वह, - उन दोनों का ज्ञान है। वे तो भगवतीस्वरूप हैं, भगवती बहिन हैं।

❁

श्री कुन्दकुन्द-आचार्यदेव विदेह में गये थे उसके कौन साक्षी हैं ? साक्षी यह चंपाबेन बैठी हैं ये हैं।

❁

बहिन की गंभीरता तो देखो ! बहिन के बोल (वचनामृत) बहुत गंभीर है। बहिन को तो कहां बाहर आना है ? बहुत उत्तम हुआ कि बहिन की यह पुस्तक बाहर आई। बहिन की पुस्तक तो बहुत सरस ! बहुत ही सरस ! जिसे अध्यात्म की रुचि हो उसके लिये तो बहुत ही अच्छी है। ऐसी पुस्तक कब बाहर आती ! बहिनका तो विचार नहीं था और बाहर आ गई। जगत के भाग्य हैं !

❁

ता.२६-८-७२

बहिन का आत्मा तो मंगलमय है, धर्म रतन है। हिन्दुस्तान में बहिन जैसी अजोड़ स्त्रियों में कोई है नहीं, अजोड़ रत्न है। स्त्रियों के तो महाभाग्य हैं जो ऐसा रत्न मिला है।

❁

ता.१७-३-७३

इन बहिन की लाइन ही अलग है। इनका वैराग्य, जातिस्मरणज्ञान, इनकी दशा-सब कुछ अलग ही है। इन्हें कहाँ किसी की पड़ी ही है ! कोई वंदन करे या न करे, ये कहाँ किसीको देखती ही हैं !

❁

('धन्य अवतार' साभार उद्धृत)

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा श्रीमद् राजचंद्र पत्रांश-४९२का वचनामृत पर मुम्बई मे हुआ भाववाही प्रवचन, दि.१४-१२-१९९७

'श्रीमद् राजचन्द्र' वचनामृत। पत्रांक-४९२, पन्ना-४००। **'मुमुक्षुजन के परम हितैषी मुमुक्षुपुरुष श्री सोभाग...'** 'सोभागभाई' मुमुक्षु का हित चाहते थे। जो भी मुमुक्षु 'कृपालुदेव' के समीप आते थे या ऐसा कोई योग्यतावान जीव हो लेकिन 'कृपालुदेव' से अपरिचित हो तो ऐसे अनेक मुमुक्षुओं को 'कृपालुदेव' के समीप ले आने में 'सोभागभाई' निमित्त हुए हैं। 'अंबालालभाई' इनमें से मुख्य हैं। फिर जो 'बोटाद' के 'मणीभाई गांधी' पर के जो पत्र हैं, वे भी 'सोभागभाई' के निमित्त से समीप आये थे। बाद में 'अंबालालभाई' के आनेपर 'खंभात' के कई सारे मुमुक्षु भी 'कृपालुदेव' के प्रत्यक्ष परिचय में आये थे। हालाँकि उनकी वैसी भावना भी रहती थी कि मुमुक्षुओं का हित कैसे हो? इसलिये ऐसा विशेषण उन्होंने लिखा है जो कि उनके गुण को देखते हुए इस्तेमाल किया है।

'मुमुक्षुजन के परमहितैषी, मुमुक्षुपुरुष श्री सोभाग्य...' वे भी स्वयं मुमुक्षु हैं। **'यहाँ समाधि है।'** समाधि अर्थात् आत्मशांति। हमें आत्मामें से आत्मशांति का अनुभव हो रहा है। **'उपाधियोग से आप कुछ आत्मवार्ता नहीं लिख सकते हो, ऐसा मानते हैं।'** क्या है कि, 'सोभागभाई' को जो उपाधि संयोग था उसमें व्यापार संबंधित उपाधि इन सालों में अधिक रहती थी। जिसके कारण इन दिनों पत्र कम लिख पाते होंगे ऐसा लगता है। इस पर से लिखा है कि, कुछ लिख नहीं पाते होंगे। इसे उपाधिजोग कहो या प्रतिकूलता कहो, प्रतिकूलता वश ऐसा लगता है सो बात लिखी है।

इसपर विशेष लिखते हैं कि **'हमारे चित्त में तो ऐसा आता है कि,...'** यानि कि विशेष विचार करने पर हमें ऐसा लगता है कि **'इस कालमें मुमुक्षुजीव को संसार की प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना, यह उसे संसार से तरने के समान है।'** यह ऐसा काल है कि यदि इस कालमें अनुकूलताएँ बनी रहे तो जीव उसमें फँस जाता है। प्रतिकूलताएँ आने पर थोड़ा सोचनेपर मजबूर होगा कि, इसमें दुःखी काफ़ी हो रहे हैं, कोई सुख का रास्ता पकड़ ले, सुख की खोज करें। अतः यदि अभिप्राय ऐसा होगा तो प्रतिकूलता का दुःख नहीं लगेगा। ऐसी प्रतिकूलताएँ आत्मा को संसार से वैराग्य उत्पन्न कराएगी। प्रतिकूलता आनेपर संसार का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्ष दिखायी देगा। और जिसके कारण आपको संसार प्रत्ययी उदासीनता और वैराग्य की उत्पत्ति होगी। अर्थात् मोक्षमार्ग के प्रति प्रगति में अवरोध नहीं होगा। वरना जीव को संसार परिणाम का रस आत्मा के प्रति झुकने नहीं देता, मोक्ष के मार्ग पर आने नहीं देना।

संसाररस और मोक्षका रस, मोक्षमार्ग का रस, आत्मरस दोनों विरुद्धरस हैं और एक-दूसरे के घातक हैं। क्या है? एक दूसरे के घातक हैं। संसाररस तीव्र होने पर आत्मरस का वह घातक होता ही है। आत्मरस तीव्र होवे तो वह संसाररस का घातक होता ही है। बलवान का विजय होता है। बलवान का विजय होना स्वाभाविक है। काफी पहलू से सोचने के बाद यह बात लिखी है।

'हमारे चित्त में तो ऐसा आता है कि,..' ऐसा करके जो लिखा है मतलब कि, इस विषयमें बहुत पहलू पर उन्हें विचार चले हैं और साथ में अनुभव भी वैसा कर रहे हैं। उन्हें भी जितनी प्रतिकूलता आती थी उतनी वह प्रगति होनेमें निमित्तभूत होती थी। प्रायः ऐसा ही बनता है, शरीर का रोग कोई नहीं चाहते। चाहता है कोई? नहीं चाहता। परन्तु रोग अगर सही

इलाज करने पर मिट जाता है तो वह नज्ञ तंदुरस्ती का कारण बनता है। ऐसे कई लोग देखे हैं कि, रोग मिट जाने के बाद पहले से बेहतर तंदुरस्ती हो चुकी हो। इसका कारण क्या है ? कि, कुछएक प्रकार की खराबी रोग द्वारा निकल जाती है। जैसे की आदमी को बुखार आता है, तो कुछ प्रकार का जहर उत्पन्न हुआ हो, शरीर में गर्मी बढ़ गई हो तो वह बुखार के माध्यम से निकल जाती है। अपने वैद्यराज अभी वही बात कर रहे थे। दस्त होने पर पेट की सफाई हो जाती है इसलिये डरना नहीं ऐसा कुछ हो जाये तो।

इस प्रकार मुमुक्षुजीव प्रतिकूलता से नहीं डरता। फिर चाहे किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता क्यों न हो। शरीर में रोग हो, आर्थिक निर्धनता या प्रतिकूलता हो या परिवार के अंदर संप न हो। ठीक ! ये सब अच्छा है। लौकिकदृष्टि से भले ही अच्छा न हो। लौकिकदृष्टि से तो ऐसा माना जाता है कि, ऐसा नहीं होता तो अच्छा और ऐसे उद्देश्य से तो लोग धर्म करते हैं। लौकिकधर्म इसी उद्देश्यपूर्वक करते हैं कि, हमें प्रतिकूलताएँ न आ जाये तो अच्छा। पारमार्थिक विचारधारा में बात बिलकुल उलटे प्रकार से है।

परिवार में मेल न हो तो तुरंत ही खयाल आता है कि इसमें ममत्व करके मैं अधोगति में चले जाता। अगर सब अनुकूल होता तो, परिवार के सदस्य अनुकूल रहे तो ममत्व करते हुए रस की मात्रा का पता नहीं चलता कि प्रति सेकन्ड कितना रस ले रहा हूँ। क्योंकि 'मेरे हैं' ऐसा परिणमन उसको बिलकुल सहज हो चुका है। लगता है जैसे अपनत्व करने में कोई गुनाह होता ही नहीं है। घर के मेम्बर्स-घरके सदस्योंमें, लड़का-लड़की, माँ-बाप, पति-पत्नी ये सब को अपने न माने तो क्या पराये माने ? लेकिन ऐसे अपनत्व में जो रस का घूँटना होता है उसमें कितना जहर पीना हो जाता है इसका पता नहीं चलता। जबकि, ये सब प्रतिकूल हो, प्रतिकार करने की संभावना हो तब पता चल जाता है कि ऐसी भ्रांति करने जेसी नहीं है ताकि तथारूप रसमें एकाकारता बंद हो और संसार का स्वरूप स्पष्ट प्रतिभास में आता है।

वैसा ही रोगादि में और निर्धनतामें है। निर्धनता में बाहरी सहुलियतें कम हो, बाह्य अनुकूलताएँ भले ही कम हो किन्तु उसवक्त सोचने का मौका मिलता है कि, यह आत्मा परपदार्थ में कुछ नहीं कर सकता। कर्ताबुद्धि जो है वह जीव का अज्ञान और भ्रांति है और परिभ्रमण का कारण है। कुछ करने जाये पर नाकाम रहे, करने जाये पर नाकाम रहे तब जीव को पता चलता है कि, कुछ करना अशक्य है। इसतरह तत्त्व का स्वरूप स्पष्टरूपसे सोचने का अवसर प्रतिकूलतामें मिलता है।

इसप्रकार सुलटा ले तो 'कृपालुदेव' ने लिखा है वह अनुभवगम्य हो सकता है कि, **'इसकाल में मुमुक्षुजीव को संसार की प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना, यह उसे संसार से तरने के बराबर हो।'** मुमुक्षु के लिये तो। कैसे मुमुक्षु के लिये ? कि योग्यतावान मुमुक्षु के लिये। अयोग्यतावान तो परिणाम बिगाड़ लेगा और अधिक कर्मबंध कर लेगा। परन्तु अगर कोई योग्यतावान मुमुक्षु होगा, पात्र मुमुक्षु होगा तो सुलटा लेगा। और प्रत्येक प्रतिकूलता के प्रसंग को आत्मकल्याण में उपकारी बना लेगा। जो-जो प्रसंग आये उसमें से आत्मकल्याण कैसे हो ? इसका हितबुद्धिपूर्वक विचार करेगा। प्रतिकूल प्रसंग का आत्महित की बुद्धिसे विचार करेगा। ज्ञानियों का परिणमन ऐसा ही होता है। यानी कि मुमुक्षु और ज्ञानी की Line एक हो गई। इसलिये तरने के बराबर है ऐसा कहा। क्योंकि ज्ञानी तो तिर रहे हैं। प्रिकूल प्रसंग में भी ज्ञानी तो निर्लेप ही रहते हैं। वे तो तरता पुरुष हैं इसलिये तिरेंगे ही। परन्तु मुमुक्षु को भी अगर इसप्रकार का, किसी भी घटना में इसप्रकार से प्रवर्ते तो वह ज्ञानदशा को प्राप्त कर लेगा। क्योंकि ज्ञानी ऐसा ही करते हैं। जैसा ज्ञानी करते हैं वैसा ही अगर मुमुक्षु का परिणमन हो तो उसे ज्ञानी होने में देर कितनी फिर तो ? ऐसा है।

'कृपालुदेव' का यह बहुत ही प्रसिद्ध वचनामृत है। यह वचनामृत बहुत प्रसिद्ध है। **'इसकाल में मुमुक्षुजीव को संसार की प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना, यह उसे संसार से तिरने के बराबर है।'** अगर योग्यता होती है तो प्रतिकूलता में संयोगों प्रत्ययी रस टूट जाता है वरना दुःखी-दुःखी हो जाता

है। दोनों ही समान हैं। अनुकूलता में रस लेना और प्रतिकूल में खेदखिन्न होना, ये दोनों समान ही हैं। ये तो एक सिक्के की दो बाजू हैं, इसमें कोई अंतर नहीं है। परन्तु इन सर्व प्रसंगों को आत्मकल्याण में निमित्त बना लेना या यथार्थ विचारणा करके ऐसे प्रसंगो में अपने परिणाम को आत्मकल्याण की दिशा में मोड़ देना, तो प्रतिकूल प्रसंग उपकारी होते हैं। और ऐसा अनुभव होने के पश्चात् मुमुक्षुजीव में ऐसी हिम्मत आ जाती है... क्या होता है ? ऐसी हिम्मत आ जाती है कि, अब मैं कोई प्रतिकूलता से नहीं डरनेवाला हूँ। चाहे कैसी भी प्रतिकूलता क्यों न आ जाये, मुझे अब घबराने की कोई वजह नहीं है। उसवक्त मैं अपने पुरुषार्थ को तीव्र कर दूँगा। प्रतिकूलता आने पर मेरा पुरुषार्थ तीव्र हो जायेगा ऐसा खुद को आत्मविश्वास पैदा हो जाता है।

अतः जगत के जीव जो कि भावी प्रतिकूलताओं के विचार मात्र से भी दुःखी हो जाते हैं और ऐसी जिसके आ जाने पर बहुत दुःखी हो जाते हैं। इसके बजाय मुमुक्षुजीव, आत्मार्थी जीव है वह प्रतिकूलता है, चाहे प्रतिकूलता आनेवाली हो, दोनों स्थिति में स्वयं आगे से ही तैयार होता है। कबसे ? एडवान्स में। आ जाओ, आने दो। मैं उसवक्त अपना कार्य विशेषरूप से करूँगा।

'अनन्तकाल से अभ्यस्त इस...' यानी कि अनंतकाल से अनुभवगम्य किया हुआ अर्थात् जिसकी प्रेक्टिस हो चूकी है। **'इस संसार का स्पष्ट विचार करने का समय प्रतिकूल प्रसंग में विशेष होता है, यह बात निश्चय करने योग्य है।'** विचारपूर्वक इसका निश्चय करनेयोग्य है कि संसार का तात्त्विकरूप से जो स्वरूप है और ऐसे तात्त्विक स्वरूप को समझने पर जो विवेक उत्पन्न होता है कि किसी भी कीमत पर इस संसार की उपासना कर्तव्य नहीं है, आराधन उचित नहीं है और कहीं भी सुख की कल्पना करने जैसी नहीं है। ज्ञानियों को संसार केवल क्लेशमय व दुःखमय लगात है। इसप्रकार प्रतिकूल प्रसंग प्राप्त होनेपर मुमुक्षु को ऐसा ज्ञान होता है; ऐसा ही ज्ञान होता है।

मुमुक्षु :– भाईश्री ! मुमुक्षु के stage मे उदीरणा सम्भव है ?

पूज्य भाईश्री :– सभव है। वीर्य का क्षयोपशम अधिक होना अपेक्षित है। वैसे क्या है कि, मुमुक्षु के पास शक्ति बहुत मर्यादित है इसलिये मुमुक्षु प्रायः उदीरणा नही करते। किसी अपवाद को बाद करके। भावनावश कोई करता है, बिलकुल नहीं करते सो बात नहीं है। भावनावश करता है कोई परन्तु अपनी शक्ति मर्यादित होने से विवेक ऐसे कर्तव्य है कि प्रथम दर्शनमोह को कमजोर करे, शक्तिहीन करे कि जिससे उपशम के योग्य हो। उदीरणा का प्रयोग चारित्रमोह कोक्षीण करने में विशेष कार्यकारी है। इसलिये मुमुक्षु नहीं करते हैं उसके पीछे कारण है कि, वे क्रम से चलनेवाले जीव हैं। और क्रम से चलना हो तब प्रथम दर्शनमोह को मारना है बाद में चारित्रमोह को। इसलिये मुमुक्षु जल्दी से उदीरणा में नहीं जाते।

जो कार्य प्रथम करने योग्य है वह प्रथम ही करना चाहिये, जो बाद में करने योग्य है उसे बाद में ही करना चाहिये। वरना शक्ति उसमें खर्च हो जायेगी। शक्ति का व्यय उसमें हो जायेगा। जैसे कि हमलोग साधनसम्पन्न हैं इसलिये हमें हररोज आहार-पानी आसानी से मिल जाते हैं। सहज-सहज। ऐसा नौबत नहीं आती है कि कभी उपवास करना पड़े। हररोज हमें खाना हो तो आराम से खा सके ऐसी हमारे पास पुण्ययोग से व्यवस्था होती ही है। फिर भी कोई उपवास करे कि चलो आहार का त्याग करना है। व्यवस्था तो है। घरमें आहार की कमी नहीं है, न तो अनाज-पानी खत्म हो गये हैं फिर भी कोई अगर उपवास करे। परन्तु इसका कोई विशेष फल नहीं है। दर्शनमोह का अनुभाग टूटे उस क्रम से, उस योजना से मुमुक्षुजीव को प्रवर्तना चाहिये। जिससे कि मोक्षमार्ग को तो प्राप्त करे।

अतः ये प्रतिकूलताएँ उदयजनित हैं कि भले प्रतिकूलता का उदय आये, मुझे उसवक्त संसार का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देगा और मेरा संसार प्रत्ययी रस ठण्डा हो जायेगा। और वैसा कर्तव्य है। दर्शनमोह को मारने के लिये संसाररस तो तोड़ने जैसा ही है। अतः ज्यादा अनुकूलताओं की वांछा नहीं करनी चाहिये, ज्यादा अनुकूलताएँ की चाहत नहीं रखना।

'यह बात निश्चय करने योग्य है।' निश्चय करने योग्य है। **'अभी कुछ सत्संगयोग मिलता है क्या?'** पूछते हैं। किसको? 'सोभागभाई' को कि, फिलहाल आपको कोई सत्संग का योग मिलता है कि नहीं? वृद्धावस्था है इसलिये आपकी सेहत कैसी रहती है? ऐसा नहीं पूछा। वरना ७० साल की उम्र पार कर चुके हैं। वृद्धावस्थे में नरम-गरम तो स्वास्थ्य रहता ही है। फिर भी सत्संग मिलता है कि नहीं ऐसा पूछते हैं।

मुमुक्षु की भूमिका में आत्मरुचि की पुष्टि हेतु पौष्टिक आहार अगर कोई है तो वह सत्संग है। क्या है? सत्संग है वह पौष्टिक आहार है। और सत्संग नित्यप्रति करने की ज्ञानीपुरुष की आज्ञा है। अगर सत्संग नहीं करेगा तो असत्संग का घिराव है ही। घर में और घर से बाहर निकलते ही सामने असत्संग ही पाओगे। क्योंकि चारों तरफ से घिरे हुए हो। और वर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि जैसा संग वैसा रंग चढ़े बिना रहेगा नहीं। सत्संग करेगा तो सत्संग का रस चढ़ेगा, असत्संग करेगा तो असत्संग का रस चढ़ेगा। इसीलिये ज्ञानी व मुमुक्षु लोग सत्संग को चाहते हैं इसका यही कारण है।

अभी ये दोनों कह रहे थे कि, हमारा सत्संग नहीं होता है। क्यों नहीं होता है? कि, हमें आलस आती है, प्रमाद हो जाता है। आलस में आ जाते हैं। हमलोग सत्संग नहीं करते हैं। वरना हफ्तेमें एक दिन छुट्टी का होता है न! मैंने कहा मम्मी-पापा के साथ बैठ जाना। और तो क्या? बाहर कहीं न जा सकते हो घर में भी सत्संग तो कर सकते हैं न? कौन नहीं कर सकता है? घरमें जिसको सत्संग के लिये सानुकूलता न हो उसको यह तकलीफ होती है घरमें। परन्तु जहाँ सत्संग के रसिक लोग घरमें ही हो तो घरमें भी सत्संग हो सकता है। वरना तो घरमें भी असत्संग तो है ही। सत्संग नहीं है तो असत्संग तो है ही।

'अभी कुछ सत्संगयोग मिलता है क्या?' नियमित करना। नियमित आप खेलने जाते हो कि नहीं? पढ़ने जाते हैं, खेलने जाते हैं, नियमित खाते हैं, नियमित सोने को चाहिये। खाना-पीना-सोना तो सब को रोजाना-नियमित होता है कि नहीं? क्योंकि वह जीवन जीने का एक हिस्सा है। Part and Partial of the life तो फिर सत्संग को भी एक हिस्सा बना देना चाहिये। जीवन का एक हिस्सा बना लेना चाहिये। जो कि मुमुक्षु के लिये बहुत ही आवश्यक है।

'अभी कुछ सत्संगयोग मिलता है क्या? यह अथवा कोई अपूर्व प्रश्न उद्‌भव होता है क्या? यह लिखने में नहीं आता, सो लिखियेगा।' देखिये! सामने से Demand की है। 'सोभागभाई' के पास हिसाब माँगते है। जबकि वेतो बहुत योग्यतावान जीव थे। जिनके निमित्त से खुद के आत्मभाव आविर्भूत होते थे, वैसे खास सुपात्र जीव थे। खास प्रकार की पात्रतावान सुपात्र जीव थे। उनको ऐसा लिखते हैं कि, फिलहाल आपको सत्संग मिलता है, कि नहीं मिलता है? इसका मतलब कि, नहीं मिलता हो तो आप सत्संग को खोजिये। एक बात।

दूसरा **'कोई अपूर्व प्रश्न उद्‌भव होता है क्या?'** इन दिनों आप कुछ लिखते नहीं हो तो लिखियेगा। बहुत अच्छी बात लिखी है। अपूर्व प्रश्न–वही का वही प्रश्न नहीं, मैं समझता हूँ यह प्रश्न नहीं। ऐसी जिज्ञासा कि वर्तमान परिस्थिति में शीघ्र आत्मकल्याण कर सकूँ इसके लिये मुझे क्या करना चाहिये? मेरे परिणाम कैसे होने चाहिये? मुझे क्या कर्तव्य है? अपूर्वदशा को प्राप्त नहीं की है वैसी अपूर्वदशा की प्राप्ति हेतु वर्तमान में मुझे क्या करना जरूरी है? मेरी वर्तमान भूमिकाको समझकर आप मुझे मार्गदर्शन दीजिये जिससे कि मैं अपूर्व दशा को प्राप्त करूँ। ऐसे कोई अपूर्व प्रश्न आपको उठते हैं कि नहीं? **'यह लिखने में नहीं आता।'** यानी कि इन दिनों आपके पत्रमें ऐसी कोई बात दिखती नहीं है।

ज्ञानी का संग व ज्ञानी की वाणी आत्मार्थ उपदेशक होती है और मुमुक्षु को आत्मा में जागृति आये वैसी जागृत करनेवाली होती है। यह यहाँ से प्रतित होता है। यहाँ क्या है कि कोई ऐसी परिस्थिति में यह पत्र लिखा है, 'सोभाग्यभाई' की परिस्थिति को देखते हुए कि वे किसी प्रतिकूल प्रसंग से गुजर रहे हैं और इसकी उपाधि में वे उलझे हुए हैं। क्या लिखते हैं? **'उपाधियोगसे आपकुछ आत्मवार्ता नहीं लिख**

सकते हो ऐसा मानते हैं।' यह हमारा अनुमान है। इन दिनों आपके पत्र में कुछ ऐसी बातें नहीं आती हैं। आपके पत्र में आत्मा संबंधित ऐसी कोई खास बात नहीं आ रही है। लगता है आप कुछ ज्यादा ही उपाधि में उलझ गये हैं। सो तो उचित नहीं हो रहा है। भले ही उपाधि आयी हो, प्रतिकूलताएँ आयी हो, आत्मकल्याण की ओर झुकीये। इस प्रसंग को भी विशेषरूपसे आत्मकल्याण की ओर निमित्त बनाईये। ऐसी ही हमारी नीति है। कार्य करने की ऐसी नीति है। जैसे हमलोग नहीं कहते कि हमारी नीति प्रामाणिकता से कार्य करने की है। तो यह सच्ची प्रामाणिकता है। आत्मकल्याण करना वह।

'आपको ऐसा एक साधारण प्रतिकूल प्रसंग हुआ है,...' क्या कहते हैं? आपको जो प्रतकूल प्रसंग बना है वह हमें पता है, परन्तु वह साधारण है। एक पत्रमें तो लिखा है न कि, 'रामचन्द्रजी' के चौदह वर्ष के वनवास का एक दिन भी नहीं है और 'पांडवो' के वनवास की प्रतिकूलता की एक घडी भी नहीं है। उन महापुरुषोंने जो प्रतिकूलताएँ सहन की हैं फिर भी धर्म से च्युत नहीं हुए। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से च्युत नहीं हुए। और तो और वर्तमान प्रतिकूलता 'गजसुकुमार' की प्रतिकूलता के सामने एक पल जितनी भी नहीं है। ये प्रतिकूलताएँ तो साधारण हैं। **'उसमें घबराना योग्य नहीं है।'** इसमें व्याकुलित होकर आप नये कर्मबंध करें यह आपके लिये उचित नहीं है। आप बिलकुल निश्चिंत रहें। प्रतिकूलता आयी है हम जानते हैं परन्तु इसमें आपको चिंतित होना आपके लिये ठीक नहीं है। आप तो विशेष पात्रतावान हैं। आकुलित क्यों हो जाते हैं?

'यदि इस प्रसंगका समता से वेदन किया जाये तो जीव के निर्वाण के समीप का साधन है।' क्या कहा? **'इस प्रसंग को...'** यानी कि आपको जो प्रतिकूलता आयी है **'यदि इस प्रसंगका समता से वेदन किया जाये...'** यानी कि सम्यक्प्रकार से समभाव रखा जाये **'तो जीवके लिये निर्वाण समीप का साधन है।'** यानी कि मोक्षमार्ग का वह साधन हो जायेगा। क्या कहते हैं यहाँ पर? जीव आत्मभाव करने के लिये निवृत्ति लेकर संसारप्रवृत्ति छोड़कर निवृत्ति लेकर एकांत में बैठकर अपने आत्मा की भावना करे, आत्मभाव को आविर्भूत करने के हेतु से यह एक बात हुई।

दूसरा प्रकार कोई एक जीव प्रतिकूल उदय आये तब विशेषरूप से आत्मभाव को यदि भाये, तो किसको ज्यादा फायदा होगा पात है? दूसरेवाले को। पहलेवाले को नहीं। क्योंकि उसने अपनी शक्ति का, अपने ज्ञानका, अपने विवेक का सही वक्त पर प्रयोग किया। उसे अधिक लाभ का कारण होगा। वैसे बैठे-बैठे कहे कि मैं आत्मा हूं... मैं आत्मा हूं... मैं आत्मा हूं... मैं आत्मा हूं... वैसे नहीं। प्रतिकूल प्रसंग आये उसवक्त 'मैं आत्मा हूं' ऐसा आये तो सच्चा। उदय के वक्त जीव मार खा जाता है। क्या बनता है? उदय के वक्त जीव मार खा जाता है। इसलिये नये कर्मों का बंध कर लेता है। अब यदि उदय के वक्त समभाव में रह सके या अपने परिणाम को Control में रख सके (तो) बहुत फायदा होता है। उदय के वक्त यदि जीव सावधान हो जाये तो, थोड़ा सावधान होकर समताभाव रख ले। उसवक्त जो फायदा होता है वह बहुत बड़ा फायदा होता है। ढेर सारी निर्जरा हो जाती है। क्योंकि उदय के वक्त जीव जुड़ जाता है। (ये) क्यों नहीं जुड़ा? पुरुषार्थ किया है। वैसे पुरुषार्थ से बहुत निर्जरा होती है। ऐसा कहना है। वरना वैसे तो संसार में हरकोई रोना रो ही रहा है। अरे..! हमारे ऐसा उदय आया... हमारे ऐसा उदय आया.. देखो! हमारे कैसा उदय आ गया! क्या करे? देखिये न! कैसे-कैसे उदय आ जाते हैं? कहते हैं कि, इस मार्ग में रोतल का काम नहीं। रोना ही है तो उठकर घर चला जा। रोना हो तो उठकर चला जा यहाँ से। रोनेवाले का इधर काम नहीं है। यहाँ तो शूरवीरों का काम है।

मुमुक्षु :– भाईश्री! प्रतिकूल प्रसंग पर उपाधि के समय जीव ज्ञानशक्ति या विवेक का सही इस्तेमाल करता है, यह बात दृष्टांत देकर जरा अधिक स्पष्ट कीजिये।

पूज्यभाईश्री :– ये 'सोभाग्यभाई' का ही दृष्टांत है। 'सोभाग्यभाई' की स्थिति ऐसी ही है। घर की सभी

व्यवस्था जिन पर निर्भर हो, जैसे घर में तो एक-दूसरे पर आधार रखते है न ? प्रतिकूलता के वक्त आधारबुद्धि तोड़ने का प्रयोग करने में मजा आता है। जैसे कभी शरीरमें रोग आता है। शरीर में आधारबुद्धि व सुखबुद्धि है। सुखबुद्धि व आधारबुद्धि तोड़ने के लिये रोग आया जैसे। अब रोग तो आपको विपरीत बुद्धि तोड़ने के लिये, अभिप्राय पलटाने के लिये आता हो तो वह तो अच्छा ही है न ! इसमें अनुचित क्या है ? आपको जो काम करना है उसमें वह निमित्त बनकर आपको सहायक होता है। और यदि आप इसमें सफल हो गये तो ज्ञान की निर्मलता आदि गुण प्रगट होनेवाले हैं। आत्मगुण प्रगट होंगे। फिर तो वह आपका कुछ लेकर गया या देकर गया ?

भगवान के मंदिर पर तो जितने लोग दर्शन करने आते हैं, इतना फायदा ही है। क्यों ? क्योंकि वे लोग कुछ न कुछ देकर जानेवाले हैं। कोई कुछ लेकर जानेवाला नहीं है। मंदिरमें से कोई कुछ ले जायेगा क्या ? जहाँ अधिक दर्शनार्थी आते हैं वह मंदिर आर्थिकरूप से समृद्ध हो जाता है। हो जाता है कि नहीं ? 'सिद्धिविनायक' को देखिये। आपके 'मुम्बई' का ही तो दाखिला प्रगट है न। पूरा इटालियन मार्बल का बना दिया। पहले कैसा था उसमें से। वैसे तुझे अगर उदय की कतार लगी है एक के बाद ऐक तो वे सब देकर जाते हैं या कुछ लेकर जाते हैं ? देख ले ! तेरी विचारधारा सुविचारणा हो 'जो प्रगटे सुवाचिरणा तो प्रगटे निज ज्ञान' ऐसी सुविचारणा से निजज्ञान प्रगट होता है। 'जे ज्ञाने क्षय मोह थई पामे पद निर्वाण।' उदय आया है तो कुछ देकर जायेगा। क्या देकर जायेगा ? कि ज्ञान की निर्मलता। मोह का नाश जितना होगा उतनी निर्मलता विशेषरूप से होगी।

'आपको ऐसा एक साधारण प्रतिकूल प्रसंग हुआ है उसमें घबराना योग्य नहीं है।' बिलकुल मत घबराईये। लोग टेन्शन/तनाव में आ जाते हैं फिर हो जाता है डायाबिटीस और हायपरटेन्शन, ब्लडप्रेशर ये सब बिमारियाँ इसीसे जन्म लेती हैं। इसका कारण घबराहट-टेन्शन-तनाव है। ऐसी घबराहट आपको उचित नहीं अतः आप बिलकुल बेफिकर रहीये।

'यदि इस प्रसंग का समता से वेदन किया जाये तो जीव के लिये निर्वाण समीप का साधन है।' इस प्रसंग का अगर समता से वेदन किया जाये। सम्यक्प्रकार से यदि इसका अनुभव किया जाये तो जीव निर्वाण के समीप पहुँच जाये ऐसा वह कारण या साधन बन जाता है। यानी कि प्रतिकूल प्रसंग बहुत लाभ के कारण हो जाते हैं। अनुकूलता की अपेक्षा प्रतिकूल प्रसंग बहुत ही फायदेमंद साबित होते हैं। इसलिये उसे निर्वाण समीप का कारण बताया।

'व्यावहारिक प्रसंगों की नित्य चित्र-विचित्रता है।' अब हमें भी जो व्यावहारिक प्रसंग उदयमें आते हैं उन सब में अनेक चित्र-विचित्रता होती हैं। क्यों चित्र-विचित्र बताया ? क्योंकि जो आपके साथ स्नेह रखते होंगे वे मूँह मोड़ लेंगे। क्यों ? क्योंकि आप तो अब सत्संग में व्यस्त रहते हो अब हमारे वहाँ आप आते नहीं हैं तो अब हम भी नहीं आयेंगे। अब इसे तो अच्छा माने या बुरा ? अच्छा, क्योंकि असत्संग छूटा। घर आने पर तो १००-१५० का चूना ही लगनेवाला है। और इसमें भी झूठमूठ का आनन्द लेनेका। आहाहा.. ! हम सब इकट्ठे हुए थे और बहुत मजा आया, साथ-साथ में थे तो बहुत मजा आया। ऐसी प्लेट बनायी, ऐसा किया, वैसा किया। ये सब से बच जाओगे। परन्तु यहाँ पर विचित्रता ऐसी है कि इसे संबंध बिगड़ा बोला जाता है। तब ऐसा कहा जाता है कि आपको संबंध बनाये रखना नहीं आता है। संबंध कैसे Maintain किये जाते हैं ये आपको सीखने की जरूरत है, ऐसा कहेंगे कि नहीं ? अरे ! लेकिन सीखकर जाना कहाँ है ? तुमको लेकिन ? संबंध बनाये रखकर और कैसे बनाये रखना यह सीखकर तुझे जाना कहाँ है ? परिभ्रमण के चक्कर में पड़ जाओगे।

'व्यावहारिक प्रसंगो की नित्य चित्रविचित्रता है। मात्र कल्पनासे उनमें सुख और कल्पना से दुःख ऐसी उनकी स्थिति है।' जीव अनुकूलता की और प्रतिकूलता की, सुख व दुःख की लाभ और अलाभ की कल्पना ही करता है। जीव को न कोई लेना न कोई देना। हम अपने ही कुटुम्ब में अपने पूर्वजोंके जितने भी नाम जानते हैं उसमें से कितने मौजूद हैं वर्तमान

में ? प्रायः कोई नहीं हैं। बाप, बाप का बाप, इनके भाई, दूसरे, तीसरे कोई मौजूद हैं अभी? वे सब थे तब क्या किया? हम भले ही वृद्ध हो गये, भले ही काम न करते हो परन्तु ये सब का ख्याल हम ही रखते हैं। क्या कहें? सबका ख्याल हम ही रखते हैं। अच्छे-बुरे प्रसंग पर सब हमारी सलाह लेते हैं। हम उन्हें सही सलाह देते हैं। वद्धावस्था में भी खुद का इतना विशेषतः महत्व समझे। अब ज्ञानी तो कहते हैं कि एकबार तो जीते जी मर जा। क्या कर? जीते जी मर जा। यह 'बहनश्री का वचनामृत' है, हं ! एकबार तो जीते जी मर जाना। जैसे मरने के पश्चात् किसी से कोई संबंध नहीं रहात वैसे अबी से संबंध नहीं रखना है। यह बात अच्छी है क्या? पागल शिक्षा लगे। कैसी? पागल शिक्षा लगे, हां ! लेकिन असत्संग से बच जायेगा। किससे बच जायेगा? असत्संग से बच जायेगा।

'**मात्र कल्पना से उनमें सुख...**' उनमें मतलब संयोगों में '**और कल्पना से दुःख ऐसी उनकी स्थिति है।**' वे प्रसंग तो उसके परिणाम के क्रम में आ रहे हैं। अब जीव यदि सुलटा समझे तो सब सुलटा ही चलेगा। सुलटा माने तो सुलटा ही फल आयेगा। उलटा लेने से सब उलटा फलेगा। संयोग जो हैं वे तो उनके पूर्वकर्म का उदय है वे उसके अपने क्रम में आ ही रहे हैं, क्रमशः उदय का आना हो रहा है। तुझे कैसे लेना यह तेरे ऊपर है। सुलटा लेगा तो सुलटा और उलटा लेने से उलटा।

'**मात्र कल्पना से उनमें सुख और कल्पना से दुःख ऐसी उनकी स्थिति है। अनुकूल कल्पना से वे अनुकूल भासित होते हैं,...**' भासित होना मतलब लगना। '**अनुकूल कल्पना से वे अनुकूल भासित होते हैं।**' ऐसा लगता है '**प्रतिकूल कल्पना से वे प्रतिकूल भासित होते हैं।**' यानी कि लगते हैं। वास्तव में न कोई अनुकूल है न तो कोई प्रतिकूल है। केवल कल्पना के अलावा। जैसे कोई आदमी घर पर झगड़ा करने आये वह अच्छा या बुरा? सो तो खुदके ऊपर है। सुलटा ले तो सुलटा और उलटा ले तो उलटा।

'आनंदघनजी' के जो पद हैं उसमें चौदहवे 'विमलनाथ' भगवान का स्तवन है। 'विमल जिन दीठा लोयण आज' उसमें दूसरा पद क्या है? 'मारा सिझ्यां वांछित काज, विमल जिन दीठा लोयण आज' आपके नेत्र देखे तो, आज मैंने आपके नेत्र देखे। लोयण नाम लोचन। लोचन नाम नेत्र। आपके नेत्रों को देखते ही मेरे सारे कार्य सफल हो गये। अब ऐसे कैसे हुआ? बहुत गहराईयुक्त बातें उन्होंने की हैं। कि, उसमें मैंने सम्यक्त्व को देखा। क्या देखा? आपके नेत्रों में मैंने सम्यक्त्व के दर्शन किये। अंतर्मुख है न? सम्यक्त्व तो दिशादर्शक है। अर्थात् आपकी मूर्ति में मुझे अंतर्मुखता के दर्शन हुए। 'विमलनाथ' भगवान तो सिद्धालय में विराजमान हैं। परन्तु उनकी प्रतिमाजी को देखकर कहते हैं। अब मुझे सब सुलटा ही दिखता है। मेरे जितने भी उदय प्रसंग आते हैं उसमें मेरे सभी कार्य सुलटे ही हो रहे हैं। ऐसा कहते हैं। 'मारा सिध्या वांछित काज' प्रत्येक उदय प्रसंग को मैं आत्मकल्याण की दिशा में ले जाता हूँ। बस ! बात खत्म ! प्रत्येक प्रसंग को मैं आत्मकल्याण में उपकारी बना लेता हूँ। ऐसी कला मुझे कैसे मिली? कि आपके लोचन देखे उसमें से सीख ली। ठीक ! बहुत तात्त्विक बातें उन्होंने लिखी हैं। बहुत-सी तात्त्विक बातें लिखी हैं।

'**अनुकूल कल्पना से वे अनुकूल भासित होते हैं; प्रतिकूल कल्पना से वे प्रतिकूल भासित होते हैं; और ज्ञानीपुरुषों ने वे दोनों कल्पनाएँ करने का निषेध किया है**' तू ऐसी कल्पना मत करना। उदय उदय में आता है तेरे आत्मा में उदय नहीं आता। उदय आत्मा में नहीं आता इसलिये आत्मा को उदय नहीं है, आत्मा से भिन्न है। उदय उदय के घर में, आत्मा आत्मा के घर में। कुछ नहीं, दूसरे न्याय लगाना न आता हो तो भी एक भिन्नत्व का न्याय लगा दे तो भी तेरा कार्य हो जाये ऐसा है। '**और ज्ञानीपुरुषोंने वे दोनों कल्पनाएँ करने का निषेध किया है।**' ऐसी कल्पना करना आपके लिये उचित नहीं। अतः आपको जो उदय चल रहा है उसमें प्रतिकूलता की कल्पना मत कीजियेगा। ऐसा प्रतिकूलता विषयक न्याय तो अन्यमत में भी है, हँ !

एक 'ध्रुव' नामका बालक था। क्या नाम था?

'ध्रुवकुमार' अन्यमत में कथा प्रचलित है 'ध्रुवकुमार'की। सुनि है क्या? ध्रुव के ऊपर तो पिक्चर, नाटक सब आ चुके हैं। उसकी माँ चल बसी। राजा की रानी थी। खुद राजा का कुंवर था। उसकी माँ जो कि रानी थी वह मर गई। राजा ने दूसरी शादी की दूसरी रानी ले आया। अब उनके अपने भी संतान हुए अब सौतेली माँका लड़का हो गया इसलिये प्रतिकूलता ही देवे, अब यह जो था वह शुरू से भगवान का भक्त था। उसके पास जैसे नौकरों के पास जितने काम करायें उतने काम कराने लगी, यह राजा का कुंवर था तो भी। ऊपर से मारपीट भीकरे। यह तो भगवान का भक्त था तो घरसे भाग गया। जंगल में गया और नक्की किया कि अब मुझे जंगल में रहकर तपश्चर्या करके भगवान का साक्षात्कार करके भगवान के पास ही रहना है। अब मुझे घर नहीं जाना है। देखो! प्रतिकूलता से क्या हुआ? कि भगवान के पास जानेकी भावना बलवान हुई। जंगल में गया, तपश्चर्या करके ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। उसने देखा कि मेरा तो बेडा पार हो गया। कैसे हुआ? किय यह तो मेरी सौतेली माँ का उपकार है। उधर उसको तो सब खोज रहे थे। खोजते-खोजते मिल गये। वे लोग कहने लगे हम तेरी माफी चाहते हैं अब तू घर चल। तो इन्होंने कहा, अरे! आपको माफी माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि मुझे आपका उपकार मानने की जरूरत है। क्यों? कि मुझे ऐसा फायदा हुआ। मुझे भगवान के दर्शन हो गये, आपने प्रतिकूलता न दी होती तो मैं कहाँ जंगल में आकर तपश्चर्या करनेवाला था?

मुमुक्षु :– इसको कहते हैं सुलटा लिया?

पूज्य भाईश्री :– यह उसने बात को सीधी ले ली। इसप्रकार सुलटा लेनेकी कला सीख लेनी चाहिये। यह आत्मकार्य करने की पद्धति है। कार्य करने की सही पद्धति यह है। फिर आप संसार हो चाहे बगैर संसार हो कहीं भी दुःखी नहीं होंगे न!

मुमुक्षु :– हमलोग शब्द बोलते हैं न 'लीलालहेर' है।

पूज्य भाईश्री :– 'लीलालहेर' मतलब (केवल आनंद ही आनंद)। आप दुःखी होंगे ही नहीं। सवाल ही नहीं उठता।

'और आपको वे करनी योग्य नहीं है। विचारवान को शोक योग्य नहीं है...' आप तो विचारवान जीव हैं। आपको अरेरे..! मुझे दुःख आ पड़ा, अरे..! मुझे ऐसा हो गया, इसप्रकार का शोक करना उचित नहीं है। **'विचारवान को शोक योग्य नहीं है ऐसा श्री तीर्थंकर कहते थे।'** तीर्थंकर को ऐसा कहते हुए हमने सुना है। ठीक! विचारवान को दुःख के लिये रुदन करना शोभा नहीं देता। अरे..! हमें दुःख आ पड़ा, अरे..! ऐसा हो गया और वैसा हो गया। कुछ नहीं न! तीर्थंकर परमात्मा की ऐसी आज्ञा है कि विचारवान को शोक कर्तव्य नहीं है। शोक करनेवाला विचारवान नहीं है जाईये।

बहुत छोटा-सा पत्र है। परन्तु मुमुक्षुजीव को उपकारी है। क्योंकि सबको चित्र-विचित्र उदय तो आयेंगे ही। उदय की चित्र-विचित्रता का पार नहीं है। जो भी आये भले ही आ जाये। हमें तो सब को एक ही नजर से देखना है। यह जादू की छड़ी हाथ लग गई। आत्मकल्याण की ओर मोड़ दो। चाहे कोई भी उदय आये उसे आत्मकल्याण की ओर अग्रेसर हो जाना।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अगस्त-२०१३) का शुल्क श्री धर्मेन्द्रभाई न्यालचंद वोरा परिवार, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री के पूज्य बहिनश्री के प्रति हृदयोद्‌गार

(१) पूज्य बहिनश्रीने वचनामृतमें (मुमुक्षुताका विषय) अनेक तरफसे लिया है। उनके प्रवचन तो बहुत वर्ष पूर्व जब (उनका) स्वास्थ्य ठीक था तब बहिनोंकी सभामें हुए थे। यह ग्रंथ ('बहिनश्रीके वचनामृत') परसे ऐसा अनुमान हो सकता है कि उनके प्रवचनोंका मुख्य विषय क्या था ? कि, आत्मार्थी - मुमुक्षुजीव, उसके परिणाम कैसे होते हैं (आत्मार्थी जीव) कैसा होता है ? बतानेके लिये उनके प्रवचनोंका मुख्य विषय चलता था।

❁

(२) पूज्य बहिनश्रीके विषयमें ऐसा सुना था कि उनका प्रवेश भी बहुत जोरसे हुआ था। उस भूमिकामें भी, बहुत शुरुआतमें, बहुत निकट-निकटके समयांतरालमें कितनी बार निर्विकल्पदशा आती थी। यह तो उनके पत्रमें आता है, अभिनंदन ग्रंथमें वह विषय आया है। वही बताता है कि बहुत उग्र दशा थी। प्रवेश ही बहुत उग्र था। उस समय अन्य आगम ज्यादा नहीं पढे थे, उम्र छोटी, अन्य आगम - दिगंबर आगमोंका परिचय नहीं (उस समय कहते थे), 'अब तो यह उपयोग जो अंदर जाता है वह केवलज्ञान लेकर ही बाहर निकले ऐसा ही करना है। यह पंचमकाल है, स्त्रीदेह है, सब भूल जाती हैं। ऐसे जोशपूर्वक उपयोग अंदर जाय, स्थिर हो जाय केवलज्ञान लेंगे अब तो। ऐसा जोश आ जाता था।

❁

(३) पूज्य बहिनश्री चर्चा करती हैं तब कभी कहती हैं कि, गुरुदेवके प्रवचन सुनते समय अपूर्व-अपूर्व ऐसा लगता रहता था। उन्होंने तो वर्षों तक प्रवचन सुने, पैतालीस वर्ष तक सुने। अब वहीकी वही बात तो कई बार आती रहती है, कोई सभी बातें हर घंटेमें नई ही आये ऐसा थोडी बनता है ? वहीकी वही बात कोईबार आती हो, फिर भी अपूर्व क्यों लगती है ? कि अपूर्व तत्त्व जो आत्मा उसका भाव उसमें दिखता है। उस वचनमें वह बहाव दिखता है। बस फिर तो महिमा आयेगी ही, महिमा (सोच-समझकर) करनी नहीं पडती।

❁

(४) गुरुदेवके महाप्रयाणके बाद पूज्य बहिनश्री एकबार इस प्रकार बोले थे कि,पर्यायफर्क है, वरना जंगलमें चले जाय (हम)। उनको सत्संगका एक बडा आधार था - गुरुदेव(का)। बहुत वैराग्य था, वैराग्य विशेष था। वैराग्यमें ऐसी बात कहते थे, क्या करें, पर्यायमें फर्क है, अन्यथा जंगलमें चले जाय निकल पडे यहाँसे। अर्थात् आत्माका साधन करें इसका अर्थ यह है कि अंतरमें लीन होकर आत्माका अहोरात्र - दिन-रात आत्मसाधन करें और अन्य कुछ न करें, ऐसा बल-जोश है इसके पीछे। इस कथनके पीछे जो जोश है, वह ऐसा जोश है और यही मुमुक्षुजीवके लिये उपदेशका विषय है कि करने योग्य तो यही प्रकार है।

❁

(५) पूज्य बहिनश्रीने अंतिम दिनोंमें अपनी अंगत (व्यक्तिगत) बात इस प्रकार व्यक्त की थी कि, अभी इस भवमें, इस पर्यायमें चारित्र दशाकी परिस्थिति नहीं है परंतु अंतर साधनाका प्रकार ऐसा उग्र था कि, इस स्थितिमें भी रहते हुए जो अचारित्रभाव हैं उसकी जड़ें (मैं) खत्म कर रही हूँ।

❁

(६) गुरुदेवकी प्रवचन-सभामें पूज्य बहिनश्री विराजमान थी तो वे भाव, सूक्ष्मातिसूक्ष्म न्याय जो निकाले हैं,

अध्यात्मके ऊँचे भाव निकाले हैं, उन्हें जो कोई समझते नहीं थे उनके सामने देखकर नहीं निकले हैं। जो समझते हैं, जो ग्रहण कर सकते हैं, जो पकड़ सकते हैं उनके कारण निकलते हैं। ऐसा प्रकार था तो उसका लाभ दूसरोंको मिल जाता है वह उन्हींको उपकारी माना जाता है। गणधरका उपकार गिना जाता है कि आप थे तो हमें लाभ मिला, अन्यथा तो वाणी ही न खिरी होती। (पूज्य गुरुदेवश्रीकी) अभी जो वाणी उपलब्ध है उसका कारण यह है। उनका उपकार है। (वे) झेलनेवाली (ग्रहणकरनेवाली थी इसलिये (गुरुदेवके) अंदरसे भाव निकलते थे।

❁

(७) पूज्य बहिनश्रीका दृष्टांत बहुत समर्थ दृष्टांत है। अपने लिये जीवंत दृष्टांत है। पन्द्रह सालकी उम्रमें उन्होंने मात्र सत्संगका ही विवेक किया है। उस समय आत्मज्ञान नहीं था। उस समय अन्य कोई गहरी धार्मिक समक्ष नहीं थी। छोटी उम्रमें सिर्फ इतनी समझ आ गइ, इतना विवेक आ गया कि, मुझे सत्संग मिलेगा तो मेरा कल्याण होगा, सत्संगके बिना कल्याण नहीं होगा तो पूरा जीवन समर्पण कर देने तकका कदम उठाया। बहुत बड़ा कदम उठाया कि, पूरा जीवन समर्पण कर दिया। सत्संग मिल रहा हो, तो पूरा जीवन बदलना है। यह घर नहीं चाहिए, यह परिवार नहीं चाहिए, ससुरालका परिवार छोड़ दिया। यह शहर नहीं चाहिए, चह प्रदेश नहीं चाहिए। जहाँ सत्संग नहीं है वहाँ किसी भी कारणवशात् रहना नहीं है। कितना साहस किया है उस उम्रमें ! उस पर्यायमें जो साहस किया है वह एक ऐसा दृष्टांत है कि, सत्संगकी कींमत क्या है, यह बात जिसे समझमें आई है, उसका फल उसे मिला है, यह उसका फल आया है, यह आत्मज्ञान है वह वास्तवमें तो उसका फल आया हुआ है, जो कि सहजरूपसे आता (ही) है।

❁

(८) पूज्य बहिनश्रीका स्वास्थ्य सही था (तब यदि) पानी पीना हो, तो वे स्वयं ही खड़े होकर पानी पी लेते थे। (कोई) पानी लानेके लिये चेष्टा करे तो ना बोल देते थे। मुझे पराधीनपनेमें नहीं रहना है, ऐसी पराधीनता मुझे नहीं चाहिए। मैं अपने आप अपना करुँ तब तक मैं खुद अपना कर लूँगी। उनकी एक स्वादीनवृत्ति थी कि खुद दूसरोंसे सेवा नहीं लेगी। ऐसा एक विकल्प (उनको) सहज रहता था। फिर किसी प्रकारमें ले जाती है वहाँ अंदरसे अभिप्राय विरुद्ध परिणाम चलते हैं।

❁

(९) गुरुदेवको उन्होने पहिचाना था। गुरुदेवके द्रारा उनको स्वयंको आत्मज्ञान हुआ था और (उन्होंने) गुरुदेवको जितना समझा था उतना शायद अन्य कोई समझ नहीं सका है। इसलिये गुरुदेवके (अंतरंगमें) क्या-क्या था, ऐसी गुरुदेवसे संबंधित अनेक बातें बहिनश्रीकी चर्चामें, बहिनश्रीकी वाणीमें समझनेको मिलेगी। हमने भले गुरुदेवको देखा है, सुना है, परिचय भी किया है फिरभी जरा अधिक गहराईसे जिनका ज्ञान उस विषयमें काम करता था, उससे संबंधित कुछ प्रसादी, ज्ञान तो ज्ञान है, परंतु जो कुछ आ सकता है (वाणीमें) ऐसी कुछ प्रसादी उनकी वाणीमें आती है। बहिनश्री स्वयं भक्तिप्रधान परिणमनवाली थी। ज्ञानी महात्मा तो थी, लब्धिधारी तो थी, परंतु भक्तिप्रधानता बहुत थी। ज्ञानप्रधानतामें ज्यादा नहीं जाती थी। ज्ञान बहुत था परंतु भक्तिप्रधानता ज्यादा थी। उनके वचनोंमें बात-बातमें वह बात आयेगी।

❁

बहिनश्रीकी तो पूरी बात ही अलग है। वह तो मुनिदशाका वर्णन इस 'बहिनश्रीके वचनामृत'में आता है न ! मुनिदशाका वर्णन कैसा किया है। सामने भावलिंगी मुनि खड़े हो और उनको देख-देखकर उनका शब्दचित्र खींच रहे हो, उस प्रकार वर्णन किया है। आजकल कहाँ कोई मुनि है, अभी तो कोई मुनि सामन् दिख नहीं रहे फिर

भी उन्हें ज्ञानमें प्रत्यक्ष करके लिखा है। ऐसा सुंदर वर्णन किया है !!

❁

(१०) उनकी वर्चामें, प्रवचनमें यह बात खास आती है कि, अंदरमें लगनी लगनी चाहिए। यह जो खास बात आती थी उसके पीछे कारण यह है कि, स्वयंको उस प्रकारका अनुभव होकर उसमेंसे गुजर चुके हैं और आगे बढे हैं। इसलिये परोक्षरूपसे ऐसा कह सकते हैं कि, परोक्षरूपसे अपना अनुभव बताते हैं। बस ! अनुभवीके रास्तेके ऊपर, अनुभवीके मार्गके ऊपर वे (जैसा) बता रहे हैं उस प्रकार चलता चला जा, अनुभव तक पहुँच जायेगा।

❁

(११) गुरुके प्रति भक्ति किस प्रकार प्रगट हो ? जिसे भक्तिके भाव प्रगट न हो रहे हो उसे बहिनश्रीकी वाणीका लाभ लेना चाहिए। क्योंकि वे भक्ति करते-करते ज्ञानी हुई और ज्ञानी हो जानेके बाद भी कोई अवर्णनीय भक्ति उन्होंने की है। इसलिये जिस मुमुक्षुको अपनी दशामें भक्तिकी कमी है ऐसा लग रहा हो उसके लिये उनके वचन उपकारभूत है।

❁

(१२) 'बहिनश्रीके वचनामृत' की विशिष्टता है कि, अनेक जगह मुमुक्षुओंको ऐसा मार्गदर्शन दिया है कि, ऐसे परिणाम हो और तेरा कार्य सिद्ध न हो ऐसी बात ही नहीं है। क्योंकि स्वयंने अपने अनुभवसे बात की है।

❁

(१३) भावनाका विषय कहते हुऐ समय अनंत तीर्थंकरोंकी साक्षी ली है। अनंता तीर्थंकरोंने यही बात कही है, इस प्रकार अपने स्वानुभवसे यह बात कही है। यह समझमें आये ऐसा है कि, बहुत छोटी उम्रमें, सामान्यतया कहें तो आखिर-आखिरके २००-४०० वर्षमें जो हो गये उनमें जितने ज्ञानी प्रसिद्ध हैं उनमें इतनी छोटी उम्रमें आत्मज्ञान की प्राप्ति की हो, सम्यग्दर्शन - स्वानुभवकी प्राप्ति की हो ऐसा यह एक Record का विषय गिनना चाहिए जो कि अठारह सालकी उम्रमें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई हो, स्वानुभवकी प्राप्ति हुई हो और वह भी स्त्रीपर्यायमें ! यह फिर एक दूसरा पिषय है।

❁

(पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा)...

रुका हुआ है; भिन्न पड़कर भीतर जा। अंतरमें तद्रूप परिणमित होनेपर तू निरालंबन होगा। जो भी निरालंबन हुए हैं, वे सब गौण करके हुए हैं। पलटना वह तेरे हाथकी बात है। ज्ञानको पकड़नेका प्रयत्न करना है। तू स्वयं अपनेसे जान रहा है, उस ज्ञायकको स्वसन्मुख कर दे। आता है न? कि,

"आलंबन साधन जे त्यागे, परपरिणतिने भागे रे,
अक्षय दर्शन-ज्ञान वैरागे, आनंदघन प्रभु जागे रे"

आलंबनको छोड़कर निरालंबी होना वह अपने हाथ की बात है। संसार में सबको छोड़कर अपने मन का कार्य करता है न! वहाँ तो अपना मन माना करता है। यद्यपि वह सब तो उदयाधीन है, तथापि ऐसा निर्णय करता है। स्वयं निश्चय करे कि मुझे यही करनेका है, तो स्वयं दूसरेका आलंबन छोड़ देता है; परन्तु यहाँ अज्ञानी आलंबनको नहीं छोड़ता और आलंबन... आलंबन... करता रहता है।

देव-गुरु-शास्त्रकी आज्ञानुसार करना। उन्होंने कहा है कि तू निरालंबी है, तू निरालंबी बन। तुझे ही निरालंबी होना है। **(स्वानुभूतिदर्शन-३४२)**

❁

द्रव्यदृष्टि प्रकाश ग्रंथमें से आत्मा कैसे प्राप्त हो उस विषय पर पूज्य श्री सोगानीजी के वचनामृत

कोई तो धारणा कर लेते हैं; कोई धारणा करके रटन करते हैं; लेकिन भाई! धारणा करके क्या तेरे को किसीको दिखाना है कि 'मैं जानकार हूँ'?

प्रश्न :- लेकिन अपने स्वरूप की प्राप्ति न हो तब तक निर्णय के लिए तो धारणा चाहिए न!

उत्तर :- धारणा सहज होती है। 'मैं धारणा कर लूँ' - यह तो बोझा उठाना है। धारणा के ऊपर जो वज़न ही नहीं आना चाहिए। धारणा होनी तो चाहिए न ! - ऐसा वज़न नहीं होना चाहिए; सहज हो तो हो। (स्वरूप की प्राप्ति के लिए विधि-विषयक जानकारी की धारणा होती है, फिर भी ऐसी सही धारणापर वज़न जानेवाले के अभिप्राय में पर्याय का आश्रय करने का अभिप्राय जो अनादि से है वह चालू रह जाता है और वह अंतर्मुखता होनेमें बाधक कारण बन जाता है।) १७७.

❁

प्रश्न :- चिंतन करना (चाहिए) क्या ?

उत्तर :- चिंतन भी भट्टी-सा लगना चाहिए; वह भी दुःखभाव लगे तो वहाँसे हट सकेंगे, नहीं तो वहाँसे क्यों किशकेंगे ? मार्ग में आता है तो ठीक; किन्तु उसको दुःखभाव जानना, उसमें एकत्व नहीं करना। चिंतन भी चिंता है, आकुलता है। 'चिंतन जहाँसे उठता है.... उस भूमिमें जमे रहो।' १७८.

❁

प्रश्न :- धारणा के बिना अनुभव हो सकता है क्या ?

उत्तर :- धारणा नहीं होवे और अनुभव हो जाये, यह सवाल ही यहाँ नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि धारणा होनेपर भी (बिना पुरुषार्थ) अनुभव नहीं होता। धारणा में 'चैतन्यमूर्ति हूँ' - ऐसा टाँक दो, और इसी स्थल पर जम जाओ, तब अनुभव होता है। १८५.

❁

यह बात समझ में आने पर 'करुँ.... करुँ' का बोझा तो हल्का हो जाए; परंतु इस त्रिकाली-अपरिणामीभाव का अनुभव होना - यही ख़ास बात है; यह अनुभव करो। २०१.

❁

अपेक्षा-ज्ञान बराबर होना चाहिए, नहीं तो खतियाने में फेर हो जाता है। किस अपेक्षा से, किस बात को कितनी मर्यादा तक कहा है, उसका ख़याल होना ज़रूरी है। २१०.

❁

झटपट मुक्ति चाहिए !.... तो बस, यहाँ (त्रिकाली में) ही बिराजमान हो जाओ। २१८.

❁

प्रश्न :- (हमको आत्मा में) स्थिरता क्यों नहीं होती ?

उत्तर :- क्षणिक (अस्थिर) परिणाम में अपनापन है, स्थिर तत्त्व को पकड़ा नहीं है, तब स्थिरता कहाँसे आए ? 'मैं अपरिणामी सदैव स्थिर ही हूँ' - ऐसे त्रिकाली -स्थिर तत्त्व में अपनापन आते ही परिणाम में स्थिरता सहज आ जाएगी, स्थिरता बढ़ेगी और पूर्णता भी हो जायेगी। पहले 'मैं त्रिकाली स्थिर तत्त्व हूँ' - ऐसी दृष्टि होनी चाहिए। २२१.

❁

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- कहा जाता है कि तू ज्ञान लक्षणको ढूँढ़ ले, परन्तु हमारे पास तो वर्तमानमें इन्द्रियज्ञान ही है, तो कैसे ढूँढ़े?

समाधान :– दृष्टिको अन्तर्मुख करना पड़ता है। इन्द्रियज्ञान भले हो, किन्तु स्वयं है न! अपना कहीं नाश नहीं हुआ है। और इन्द्रियज्ञान कहीं अंतरमें प्रविष्ट नहीं हो गया है।स्वयंने मान रखा है; परन्तु अपने ज्ञानमें कहीं परद्रव्य प्रविष्ट नहीं हो गया है और अपना अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ है। इसलिये अपनी परिणतिको अंतर्मुख करके तू स्वयं कौन है वह ढूँढ़ ले। बीचमें मन और इन्द्रिय आते हैं उन्हें गौण करके तथा अपने ज्ञानको मुख्य करके तू ज्ञान-लक्षणसे पूरा ज्ञायकको पहिचान ले। तू इन्द्रियोंको साथ रखता है इसलिये इन्द्रियोंसे जाननेमें आया ऐसा तुझे लगता है; परन्तु तुझे अपने ज्ञानसे जाननेमें आता है। उस ज्ञान-लक्षणसे तुझे अपने अंतरमें देखना है। इन्द्रियाँ साथ होती हैं इसलिये ऐसा कहा जाता है कि इन्द्रियज्ञानसे जाना, परन्तु अंतर्दृष्टि कर न! तू स्वयं ही है, तू कहीं खो नहीं गया है। स्वयं ही अपना साधन है। अन्य साधन क्या हो सकता? (नहीं है)। अपना कहीं नाश नहीं हुआ है।

मुमुक्षु :– अपनी सत्ताका स्वीकार क्यों नहीं करता?

बहिनश्री :– तू स्वयं अपनेसे देखनेका कार्य कर रहा है, परन्तु अपनेको नहीं देखता इसलिये तुझे ऐसा लगता है कि मुझे तो इन्द्रियसे-आँखसे देखना है, मनसे विचारनेका है, अन्य कोई साधन नहीं है। परन्तु तू स्वयं ही है। (वह तो तेरे क्षयोपशमज्ञानसे ज्ञात होता है।) वे इन्द्रियाँ कहाँ तुझे बतलाती हैं? तू अपने ज्ञानको अपनी ओर मोड़, तो तू स्वयं ही तुझे ज्ञात होगा। इससे जाना जाता है, इन्द्रियोंसे ज्ञान होता है–ऐसा लक्ष्य किसलिये करना? तेरा अस्तित्व है उसे तू खोज ले; ज्ञानलक्षणसे ज्ञायकको ढूँढ़ ले; उसमें सब बाह्य आलंबन और साधन गौण हो जाते हैं। वे होते हैं किन्तु तू अपनेको मुख्य कर ले। साधनोंको गौण करना वह तेरे हाथकी बात है।

तू निरालंबन ही है, तेरा नाश नहीं हुआ है। तू अपनेको मुख्य करके उस ओर जा तो तू स्वयं ही है। पुरुषार्थ कर तो तू स्वयं ही है। तू अपनेको मुख्य कर ले कि मैं ज्ञायक ही हूँ, मैं स्वयं ही ज्ञाता हूँ, मेरा कहीं नाश नहीं हुआ है। इस प्रकार ज्ञानलक्षणको मुख्य करके तू ज्ञायकको पहिचान ले तो बाह्य आलंब गौण हो जायँगे। तू अपना आलम्बन ले ले। जब भी प्रयत्न कर तब बाह्य आलंबनोंको गौण करनेका ही है और वह तुझे ही करना है। वह बिना प्रयत्नके पहलेसे हुआ नहीं होता, जब भी करे तब तुझे ही गौण करना है, और तुझे ही मुख्य होना है। इसलिये तू अपनेको मुख्य करके तथा बाह्य आलंबनोंको गौण–ढ़ीला–करके अपनेको खोज ले। पहले दूसरा आलम्बन लेकर करना पड़ेगा ऐसा नहीं है। तू स्वयं ही है। जब करे तब अपनेसे ही करना है। ज्ञानलक्षणको मुख्य तुझे स्वयं ही करना है। उसे मुख्य करके तू अपने ज्ञायकको पहिचान ले। अन्य आलम्बनोंको किसलिये मुख्य करता है? वे आलम्बन कहाँ जानते हैं? जाननेवाल तो तू है। आलंबन बीच में आता है किन्तु वह मन या आँख कहाँ जानते हैं? इसलिये उनकी महत्ता करके उन आलंबनोंको किसलिये मुख्य करता है? और बाहर आता है? अतः तू अपनी ओर मुड़ जा और द्रव्यको ढूँढ़ ले।

अपनेको जिसे खोजना है वह तो स्वयं हाजिर ही है। स्वयं हाजिर है और स्वयं को ही खोजनेका है; उसमें आलंबन तुझे कहाँ रोकते हैं? तू स्वयं

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-१४ पर)

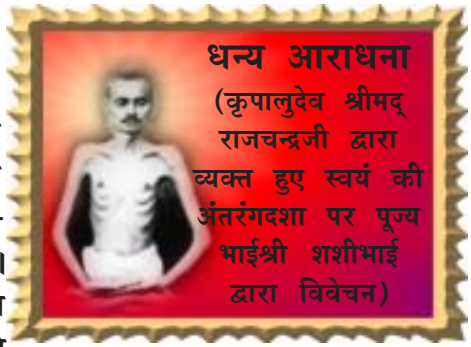

२५७

बंबई, आषाढ़ वदी ४, १९४७

'बहुत कुछ लिखना सूझता है, परन्तु लिखा नहीं जा सकता। उनमें भी एक कारण समागम होनेके बाद लिखने का है। और समागम के बाद लिखने जैसा तो मात्र प्रेम-स्नेह रहेगा, लिखना भी वारंवार आकुल होने से सूझता है। बहुतसी धाराएँ बहती देखकर, कोई कुछ पेट देने योग्य मिले तो बहुत अच्छा हो, ऐसा प्रतीत हो जानेसे, कोई न मिलने से आपको लिखने की इच्छा होती है।'

परम कृपालुदेवकी विचारशक्ति और चिंतनशक्ति असाधारण प्रबल होने के कारण विचारधारा और चिंतनधारा बहुत ही चलती है; उस विषयमें श्री सौभाग्यभाईको लिखनेका विचार भी आता है; परन्तु प्रत्यक्ष समागम होने के बाद और प्रत्यक्ष समागममें कुछ स्पष्टीकरण होने के बाद लिखना उचित लगात है। फिर भी वैसा लिखने का विषय बहुत एकत्र हो जानेसे बारंबार आकुल होने से लिखना सूझता है; परन्तु हमारे चिंतन का विषय समझनेवाला पात्र यानी कि 'पेट देने योग्य' (अर्थात् हृदय की बात जिसे कह सके) कोई मिले तो अच्छा, ऐसा लगने से कोई नहीं मिलने से श्री सौभाग्यभाई को लिखने की इच्छा होती है।

❁

२५९

बंबई, श्रावण सुदी ११, बुध, १९४७

'हमारा चित्त तो बहुत हरिमय रहता है, परन्तु संग सब कलियुग के रहे हैं। माया के प्रसंग में रात-दिन रहना होता है; इसलिये पूर्ण हरिमय चित्त रह सकना दुर्लभ होता है, और तब तक हमारे चित्तका उद्वेग नहीं मिटेगा।'

इस पत्रमें भी स्वयंकी आत्ममयदशा बहुत रहती है उसका उल्लेख किया है। एक तरफ अंतर में चैतन्यमय उग्र दशा है तो दूसरी तरफ़ वर्तमान कलियुग अनुसार अनेक प्रकार के व्यावसायिक और व्यावहारिक प्रसंग में प्रवर्तन से पूर्ण चैतन्यमय चित्तका रहना दुर्लभ होता है और ऐसा लगता हैकि जब तक पूर्ण दशा नहीं होगी तब तक चित्तका यह उद्वेग नहीं मिटेगा। यहाँ पर मोक्षमार्गी धर्मात्माओं की दशा संबंधी एक सिद्धांत स्पष्ट होता है कि अध्यात्मदशा विशेषतापूर्ण होने पर भी, पूर्णता का लक्ष्य होनेसे वर्तमान दशा का संतोष नहीं होता परन्तु अपूर्णताका उद्वेग चालू रहता है।

'आपने (सौभाग्यभाईने) दोहे इत्यादि लिख भेजे यह अच्छा किया। हम तो अभी किसीकी सम्भाल नहीं ले सकते। अशक्ति बहुत आ गयी है, क्योंकि चित्त अभी बाह्य विषय में नहीं जाता।'

श्री सौभाग्यभाईने दोहा इत्यादि कुछ लिखकर भेजा है उसका निषेध नहीं किया बल्कि अनुमोदन किया है, साथ हीसाथ अपनी दसाका उल्लेख किया है कि आपकी लिखावट हुए सम्बन्धित उपयोग देकर (सम्भाल लेकर) कुछ लिख सके ऐसी हमारी चित्तस्थिति नहीं हैह। हमारे आत्मस्वरूपके अलावा किसी भी दूसरे विषय में उपयोग देने के लिये परिणाम में बहुत अशक्ति आ गयी है अर्थात् बाह्याकार उपयोग का जोर टूट गया है। कैसी आत्मामयदशा होगी! यह उक्त वचनों से समझने योग्य है।

❁

मुमुक्षुजीव के आदर्श समान धन्यावतार प्रशममूर्ति
'पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन' के १०० वें मंगलकारी जन्मोत्सव के
अवसर पर अत्यंत विनम्रभाव से, दासत्वभाव से कोटि कोटि वंदन !

गुरुदेवश्री की प्रवचन सभा में पूज्य बहिनश्री बिराजमान थे तो यह भाव और सूक्ष्म से सूक्ष्म न्याय निकले हैं, अध्यात्म के ऊँचे भाव निकले हैं, वह कोई नहीं समझता उनके सामने देखकर नहीं निकले हैं। जो समझते हैं, जो ग्रहण कर सकते हैं, जो पकड़ सकते हैं उनके कारण से निकलते हैं। तीर्थंकर की सभा में गणधर की हाजीरी से यह बात निकलती है। वह प्रकार था तो उसका लाभ सबको मिला। यह उनका उपकार है। गणधर का उपकार इसीलिए गाया जाता है कि, आप थे तो हमें लाभ मिला, वरना वाणी ही न छूटती।
(पूज्य गुरुदेवश्री की) अभी जो वाणी उपलब्ध है उसका भी यही कारण है। उनका उपकार है। (वे) ग्रहण करनेवाले थे तो अन्दर से भाव निकलते थे।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई